

समकालीन हिंदी कविताओं में आदिवासी जीवन

डॉ. शिराजोदीन

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,

कर्नाटक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बीदर

Email- drshirajoddin@gmail.com

शोध सार

भारत के परिप्रेक्ष्य में हमेशा से चर्चा का विषय रहा है कि यहाँ के मूल निवासी कौन हैं? कुछेक विद्वानों और इतिहासकारों का मानना है कि यहाँ के मूल निवासी द्रविड़ हैं तो कुछेकों ने आर्यों को माना है। लेकिन इन विवादों के बीच एक और धड़ा है जोकि आदिवासियों को यहाँ का मूल निवासी मानता है। यह कहना तर्कसंगत होगा कि भारत के भू-भाग पर सदियों से रहने वाला मूलनिवासी समाज ही आदिवासी समाज है। यह समाज अपनी विशेष संस्कृति, भाषा, मान्यता आदि के कारण भारतीय जनमानस में एक अलग पहचान रखता है। वर्तमान समय में मूलनिवासी समाज को भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। जैसे- मूलनिवासी, आदिवासी, बनवासी, अनुसूचित जनजाति, गिरिजन, भूमिजन आदि। भारत के कई ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ यह समाज जल-जंगल-जमीन को बचाने के लिए लगातार संघर्ष कर रहा है। इनके संघर्ष को आगे बढ़ाने में आदिवासी व गैर आदिवासी साहित्यकारों और सामाजिक क्रांतिकारियों का बड़ा योगदान रहा है। विशेष रूप से हिंदी के आदिवासी व गैर आदिवासी साहित्यकारों ने अपनी कविताओं के माध्यम से इस समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को चित्रित करने में अहम भूमिका निभाई है। इन कविताओं में समसामयिक चुनौतियों के साथ-साथ जीवन यथार्थ, चेतना व जागरूकता आदि के तत्व विद्यमान हैं। अतः हिंदी के आदिवासी साहित्य में कविता की भूमिका महत्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा रही है। इसीलिए रचनाकार बड़ी बेबाकी से अपने विचार प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द : भारतीय समाज, आदिवासी जीवन, आदिवासी समाज की चुनौतियाँ, समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी एवं जीवन यथार्थ।

शोध प्रविधि : अनुसंधान की सामाजिक पद्धति के साथ-साथ विश्लेषणात्मक, समीक्षात्मक और आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

मूल आलेख

भारत की सरजमी पर सदियों से रहने वाला मूलनिवासी समाज ही आदिवासी समाज है। वर्तमान समय में हम सभी लोग जानते हैं कि मूलनिवासी समाज को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। जैसे- मूलनिवासी, आदिवासी, बनवासी, अनुसूचित जनजाति, गिरिजन, भूमिजन आदि। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि इस समुदाय के लोगों को मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया गया। दरअसल इन्हें असभ्य या तो जंगली कह कर खदेड़ा गया। इस सन्दर्भ में

आदिवासी चिन्तक डॉ. गंगा सहाय मीणा के विचारों पर भी दृष्टि डालना दिलचस्प है। वे लिखते हैं- “आदिवासियों के बारे में मानवशास्त्र से लेकर दूसरे तमाम अनुशासनों में हुए अध्ययनों में से अधिकांश अतिवादी निष्कर्ष से नहीं बच पाए हैं- अध्ययनकर्ताओं ने या तो आदिवासियों की असभ्य और बर्बर छवि निर्मित करने की कोशिश की है, या फिर उनका इतना अधिक महिमामंडन किया है कि वे इनसान नहीं, मिथकीय देवता लगते हैं।”¹ वर्तमान समय भारत में 10 करोड़ से ज्यादा आदिवासी हैं। लेकिन यह समाज सबसे उपेक्षित है। दरअसल इस समाज के लोगों को कभी जंगली समझकर मारा गया तो कभी नक्सली समझकर। कभी विकास के नाम इनकी जमीन छिनकर खदेड़ा गया तो कभी विस्थापन के लिए मजबूर किया गया।

गुजरात में सरदार वल्लभ भाई पटेल की 143 वीं जयंती पर 182 मीटर ऊंची प्रतिमा 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' की स्थापना की गयी। जिसे बनाने में देश के खजाने से करोड़ों रुपये खर्च किए गए। इस सन्दर्भ में 'क्विंट हिंदी' की रिपोर्ट उल्लेखनीय है- “गुजरात में स्टैच्यू ऑफ यूनिटी के तौर पर सरदार वल्लभभाई पटेल की मूर्ति लगाने पर 2,989 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इतनी बड़ी रकम से देश में आईआईटी के दो कैंपस, पांच आईआईएम कैंपस और मंगल अभियान के लिए इसरो के छह मिशन शुरू हो सकते थे।”² इससे गुजरात का आदिवासी समाज काफी नाराज व गुस्से में है। दरअसल जहां इस मूर्ति को स्थापित किया गया है, वहां के जल ग्रहण क्षेत्र में पानी की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। इसके साथ-साथ ही आदिवासी समाज मूर्ति की वजह से विस्थापित हुए लोगों के ठीक से पुनर्वास न होने से भी नाराज है।

इस गंभीर समस्या पर 'दिप्रिंट' हिंदी की यह रिपोर्ट उल्लेखनीय है- “नर्मदा ज़िले में आदिवासियों की उच्च शिक्षा का स्तर गुजरात में सबसे कम है, लगभग 5 प्रतिशत ही उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। 6 लाख आबादी वाले इस ज़िले में एक भी अस्पताल नहीं है जिसमें आईसीयू की सुविधा हो। 85 प्रतिशत महिलाएं कुपोषित हैं। सिकल सेल एनीमिया आदिवासियों की जान ले रहा है। यहां आदिवासी इतना गरीब है कि उसके पास शरीर ढंकने के लिए कपड़ा नहीं।”³ यह वर्तमान समय का विरोधाभास है कि एक तरफ 'एकता' की बात कर रहे हैं और दूसरी तरफ आदिवासी समाज के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि अधिकारों और उनके जीवन को तहस-नहस कर रहे हैं। ये वही समाज है जो भारत देश को देश बनाने में अपने आपको मिटाने में पीछे नहीं हुआ, बल्कि अपना जीवन देश व समाज के लिए समर्पित कर दिया।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि- “भारत का आदिवासी समाज अंग्रेजी राज्य तथा अंग्रेजों द्वारा पोषित जमींदारों, साहूकारों के विरुद्ध 1781 ई. से ही अनवरत संघर्षरत रहा है। उनका 'मुक्तिकामी' संघर्ष अभी भी इतिहास के पृष्ठों पर 'उपद्रव' के रूप में ही दर्ज है। तिलका माझी (बाबा तिलका सन 1775- 1785) भारत के पहले आदिवासी व्यक्ति थे जिसने कंपनी सरकार को अपना स्वामी मानने से इनकार कर दिया था। उन्होंने करों का भी विरोध किया था। तिलका माझी रसद की गाड़ियां एवं राजस्व वसूल कर उसे आदिवासियों को वितरित कर देते थे। अंत में उन्हें बरगद के पेड़ से बांधकर फांसी दे दी गई।”⁴ यह बात अलग है कि आदिवासी समाज के शौर्य और योगदान को इतिहास के पन्नों से मिटा दिया गया है। दरअसल शासक वर्ग ने इतिहास लेखन को अपने पक्ष में लिखवाया है। “भारत का सही

इतिहास कभी लिखा ही नहीं गया। सवर्ण इतिहासकारों ने जो भी लिखा वह पक्षपातपूर्ण और एक तरफा लिखा। विडम्बना है कि दलितों और आदिवासियों को सदैव इतिहास से बाहर रखा गया। उनके बड़े से बड़े त्याग, बलिदान और शौर्य गाथाओं का इतिहास में उल्लेख तक नहीं किया गया। सन 1780 से सन 1857 तक आदिवासियों ने अनेकों स्वतंत्रता आन्दोलन किए। सन 1780 का 'दामिन विद्रोह' जो तिलका मांझी ने चलाया, सन 1855 का 'सिहू कान्हू विद्रोह', सन् 1828 से 1832 तक बुधू भगत द्वारा चलाया गया 'लरका आन्दोलन' बहुत प्रसिद्ध आदिवासी आन्दोलन हैं।

इतिहास में इन आन्दोलनों का कहीं जिक्र तक नहीं है। इसी तरह आदिवासी क्रान्तिवीरों जिन्होंने अंग्रेजों से लड़ते हुए प्राण गंवाए उनका भी इतिहास में कहीं वर्णन नहीं है।⁵ इस समाज की सच्चाई यह है कि सन् 1780 से 1857 तक 77 वर्षों में आदिवासियों द्वारा किए गए स्वतंत्रता आन्दोलनों में लाखों आदिवासी मारे गए। दूसरी तरफ सन् 1857 से 1947 तक 90 वर्षों में गैर-आदिवासियों द्वारा किए गए राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलनों में शायद कोई मारा गया हो। राष्ट्रीय आन्दोलनों में सबसे बड़ा नरसंहार सन् 1919 में हुए जलियांवाला बाग हत्या काण्ड था। जिसमें 379 लोग शहीद हुए थे। इसके मुकाबले सन् 1855 में हुए सिहू और कान्हू विद्रोह में 10 हजार आदिवासी शहीद हुए थे। आदिवासियों के ऐसे अनेक आन्दोलन हुए हैं। लेकिन इतिहास के पन्नों में शायद इसका उल्लेख मिलता हो। दरअसल प्राचीन काल से लेकर मुगल काल तक राजा-महाराजों के दरबारी इतिहासकारों ने केवल अपने राजा-महाराजों की प्रशंसा की तथा उनके महिमामंडन में अपने लेखन को समर्पित किया। लेकिन यह बात भी सच है कि स्वतंत्रता के बाद इतिहासकारों ने आदिवासियों के आन्दोलन को अपने लेखन में स्थान दिया है। इस सन्दर्भ में आदिवासी साहित्यकार 'हरिराम मीणा' के विचारों को स्पष्ट करना उचित होगा। "आजादी के इतिहास लेखन के क्षेत्र में निस्संदेह महत्वपूर्ण कार्य वामपंथी इतिहासकारों ने किया। किसानों व श्रमिकों के आन्दोलनों, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों, वर्ग-संघर्ष की परम्परा आदि को उजागर करने का प्रयास हुआ।"⁶

इसमें कोई दोराय नहीं है कि आजादी के 75 साल बाद भी आदिवासी समाज एक शोषित समाज बना हुआ है। दरअसल सत्ताधारियों, पूंजीपतियों, सामंतवादियों एवं शोषकों ने इस समाज को हर तरह से सताया है। समकालीन समय में यह समाज अनेक समस्याओं से न केवल जूझ रहा है बल्कि जल-जंगल-जमीन को बचाने का संघर्ष भी कर रहा है।

कुछ अपवादों को छोड़कर मुख्यधारा का साहित्य आदिवासी समाज को उपेक्षित समझा तथा हाशिए पर रखने का कार्य किया है। लेकिन आधुनिक साहित्य की बात करें तो साहित्यकारों ने अपने लेखन के माध्यम से इस समाज के यथार्थ को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया है। वर्तमान समय में हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं में आदिवासी समाज के बारे में लिखा जा रहा है। आज यह साहित्य की दुनिया में चर्चा का विषय बन कर उभर रहा है। इसी श्रेणी में समकालीन हिंदी कविता आदिवासी समाज के यथार्थ को जानने व चित्रित करने में सशक्त माध्यम बनी है। इसमें समकालीन कवियों द्वारा आदिवासी समाज की समस्याओं का चित्रण अस्तित्व, अस्मिता, अधिकारों, सामाजिक सरोकार तथा संघर्ष के बारे में गहन चिंतन-मनन किया गया है। जब भी आदिवासी साहित्य या साहित्यकारों की चर्चा की जाती है तो 'निर्मला पुतुल' नाम अग्रणीय श्रेणी में लिया जाना स्वाभाविक है। क्योंकि यह

खुद आदिवासी हैं और अपने समाज के उतार-चढ़ाव को बड़े करीब से देखने के साथ-साथ महसूस भी किया है। इनकी समस्त कविताओं में आदिवासी समाज के विभिन्न पहलुओं की चर्चा की गयी है। इनकी 'आपके शहर में आपके बीच रहते आपके लिए' कविता में आदिवासी समाज की विसंगतियों, समस्याओं और जीवन यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। वे लिखती हैं-

“मैं अपने इलाके के सूखे और
अकाल की चर्चा करना चाहती हूँ आपसे
भूख बिमारी से लड़ते-मरते मंगरू, बुधवा और
इलाज के लिए राशन कार्ड गिरवी रखने वाले समरू पहाड़िया की
बात करना चाहती हूँ
जड़ खाकर ज़िंदा संतालों
और चूहे पकाकर खा रहे भूखे-नंगे-पहाड़ियों की
बात करना चाहती हूँ”⁷

आदिवासी समाज की मर्मस्पर्शी स्थिति को अभिव्यक्त करती हुई कविता की पंक्तियाँ तथाकथित 'सभ्य समाज' और 'सभ्य व्यवस्था' पर व्यंग्य है। कवयित्री 'निर्मला पुतुल' द्वारा आदिवासी समाज का आँखों देखा हाल इस कविता में प्रस्तुत हुआ है। समाज में फैली विषमता जैसे- अकाल, भूख, बीमारी आदि से यह समाज पीड़ित है। लेकिन इनकी स्थिति को जानते हुए भी पूरी व्यवस्था मूकदर्शक बनी हुई है। दरअसल व्यवस्था ही इस स्थिति के लिए ज़िम्मेदार है। यदि सरकार की नीतियाँ या योजनाओं का लाभ सही रूप से इनको मिलता तो शायद इनकी स्थिति में बदलाव दिखाई देता। लेकिन सत्ता में बैठे लोग नहीं चाहते कि आदिवासी समाज का विकास हो, उन्हें सारे अधिकार मिले। दरअसल शासक वर्ग ही बल प्रयोग या बन्दूक की नाली पर इनका शोषण करता आ रहा है। वर्तमान समय में ऐसी अनेकों घटनाओं से भारतीय समाज परिचित है। भारतीय संविधान में 'पांचवी अनुसूची' के अनुच्छेद 244 (1) अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के अधिकार का कानून है। लेकिन सही रूप में लागू नहीं हुआ। इस सन्दर्भ में आदिवासी लेखक डॉ. गंगा सहाय मीणा का कहना है- “आजाद भारत में हुआ ये कि एक तो आदिवासियों के पक्ष में ठीक से कानून नहीं बने, और जो बने, उन्हें ठीक से लागू नहीं किया गया। मसलन 5वीं अनुसूची और 6ठी अनुसूची, 'जनजातीय सलाहकार परिषद' आदि बातें कागजों तक रह गईं। जंगलों पर आदिवासियों के परंपरागत अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए यूपीए सरकार ने वन अधिकार अधिनियम बनाया। चूंकि जिस याचिका पर सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने लाखों आदिवासियों की बेदखली का आदेश दिया, उसका लक्ष्य वन अधिकार अधिनियम को चुनौती देना है।”⁸ फिलहाल “उच्चतम न्यायालय ने गुरुवार को 13 फरवरी के अपने उस आदेश पर रोक लगा दी। जिसमें उसने देश के करीब 21 राज्यों के 11.8 लाख से अधिक आदिवासियों और जंगल में रहने वाले अन्य लोगों को जंगल की जमीन से बेदखल करने का आदेश दिया था।”⁹

वर्तमान समय में आदिवासी समाज विस्थापन के संकट से जूझ रहा है। पूंजीवाद और बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने जंगलों पर अपना कब्जा जमाने का आए दिन प्रयास कर रहे हैं और सफलता भी प्राप्त की है। भूमंडलीकरण और

विकास के नाम पर जिस तरह से आदिवासी समाज के साथ छलावा किया जा रहा है, उससे वह समाज अनभिज्ञ है। समकालीन कवि 'ज्ञानेन्द्रपति' व्यवस्था द्वारा किये जाने वाले शोषण, अत्याचार और विस्थापन के यथार्थ को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। 'आदिवासी गाँव से गुजरती सड़क' कविता की यह पंक्तियाँ हमें व्यवस्था के शोषण व आदिवासी समाज के यथार्थ से रूबरू कराती हैं-

“इस आदिवासी गांव के आँगन से गुजरती हुई यह सड़क
अत्याचारियों के गुजरने का रास्ता है
यह इनके पैरों से नहीं बना
यह इनके पैरों के लिए नहीं बना
बड़े-बड़े रोड रोल्स आए थे लुटेरे वाहनों के आने से पहले
धरती कँपाते धीरे-धीरे चलते हुए विशालकाय रोड रोल्स”¹⁰

समकालीन समय में आदिवासी समाज पूंजीपति, भू-माफिया, दमनकारी नीतियों के खिलाफ संघर्ष कर रहा है। एक तरफ आदिवासी समाज का संघर्ष है तो दूसरी तरफ विकास का मसीहा कॉरपोरेट जगत, निरंकुश सरकारें, दुर्बल कानून व प्रशासन और बिकाऊ मीडिया है। आदिवासियों के प्राकृतिक संपत्ति को पूंजीवाद के रक्षकों ने लूटा है तथा इस समाज को विस्थापन, बेकारी, लाचारी, गरीबी, भूखमरी की आग में धकेला है।

इस जद्दोजहद में आदिवासी समाज जागरूकता की ओर बढ़ रहा है। दरअसल इस समाज को जागरूक करने में आदिवासी नायकों का नेतृत्व, एक्टिविस्ट और साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी श्रेणी में समकालीन मार्क्सवादी साहित्यकार 'रमणिका गुप्ता' के सामाजिक संघर्ष, आन्दोलनों और उनके साहित्य को भुलाया नहीं जा सकता। इन्होंने अपने साहित्य में समाज के उन तमाम तबकों को जगह दी, जिसे मुख्यधारा का साहित्य उपेक्षित समझ कर हाशिए पर रखा था। इन्होंने आदिवासी समाज के कई संघर्षों व आन्दोलनों में हिस्सा लेकर नेतृत्व भी किया तथा उनके हितों के लिए कार्य किए। इनके कार्यों के बारे में 'दलित दस्तक' का यह उद्धरण सार्थक है- “1967 में बिहार में पड़े अकाल के दिनों में वे सक्रिय रहीं और कई गांवों में लंगर चलाए। 1967 में रमणिका जी कच्छ आंदोलन में गईं। जार्ज फर्नांडीज के साथ दो बार गिरफ्तार हुईं। आंदोलन में उन्हें इतनी मार लगी थी कि वे बेहोश हो गईं।”¹¹ इनकी 'जंगल का संघर्ष' कविता में सन 1968 में हुए आदिवादी आन्दोलन और संघर्ष का उल्लेख मिलता है। जिसमें वे खुद शामिल थीं। वे लिखती हैं-

“सितम्बर था
सन उन्नीस सौ अड़सठ का।
जंगल के
आदिवासी-वनवासी को
नारा दिया था हमने
'घूस नहीं अब घूँसा देंगे'
सूत्र दिया था हमने
'लाठा, छावन और जलावन

मुफ्त में सबको देना होगा
मंत्र दिया था हमने
'जो जोते हैं जंगल-जमीन
उनको कब्जा देना होगा'।¹²

हमेशा से आदिवासी समाज का संघर्ष जंगलों को बचाने व प्रकृति की रक्षा करने से जुड़ा है। “आदिवासियों और वनों के बीच एक सहजीवी संबंध है। जनजातीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति के साथ वनों का संबंध बहुत ही गहरा है। भोजन, ईंधन, लकड़ी, घरेलू सामग्री, जड़ी-बूटी, औषधियों, पशुओं के लिए चारा और कृषि औजारों की सामग्री के लिए वनों पर आश्रित रहते हैं। उनकी संस्कृति भी वनों से प्रभावित होती है। वे अनेक वृक्षों की पूजा करते हैं।”¹³ लेकिन वर्तमान समय में औद्योगीकरण के नाम पर पेड़ों को आग के हवाले किया जा रहा है और जंगलों को काटकर गगनचुंबी इमारतों का निर्माण किया जा रहा है। इससे हमारी प्रकृति पर संकट मंडरा रहा है। जंगलों को नष्ट करने से आदिवासियों का जीवन तो संकट से गुजर ही रहा है लेकिन वन्य जीवों और प्रकृति पर भी इसका अधिक प्रभाव पड़ रहा है। यह गंभीर चिंता का विषय है। जिस तरह से आदिवासियों को जंगलों से खदेड़ा जा रहा है, ठीक उसी तरह वन्य जीव भी जंगल छोड़ने पर विवश हैं। इसीलिए आदिवासी समाज प्रकृति, संस्कृति, परम्परा, अस्मिता और अस्तित्व को बचाने के संकट से जूझ रहा है। इस सन्दर्भ में समकालीन कवयित्री ‘निर्मला पुतुल’ की कविता प्रासंगिक कहलाती है। वे लिखती हैं-

“सन्थाल परगना
अब नहीं रह गया सन्थाल परगना
बहुत कम बचे रह गये हैं
अपनी भाषा और वेशभूषा में यहाँ के लोग
उतना भी बच नहीं रह गया ‘वह’
सन्थाल परगना में
जितने कि उनकी
संस्कृति के किस्से!”¹⁴

पर्यावरण पर अपना प्रेम दिखाने वाली सरकार एक तरफ पर्यावरण की रक्षा के लिए अपनी प्रतिबद्धता दिखाती है और दूसरी तरफ विकास के नाम पर करोड़ों पेड़ काटने का आदेश देती है। ‘द वायर हिंदी’ की एक रिपोर्ट के अनुसार- “साल 2014 से 2019 के बीच पर्यावरण मंत्रालय ने विकास कार्यों के लिए 1.09 करोड़ पेड़ काटने की अनुमति दी। इसमें से सबसे ज्यादा साल 2018-19 में 26.91 लाख पेड़ काटने की इजाजत दी गई थी।”¹⁵ इस तरह से जंगलों का सफाया किया जाना चिंता का विषय बना है। अतः आदिवासी समाज इस व्यवस्था के दोहरे चरित्र से परेशान है। बात की जाए आदिवासी स्त्री की तो इसका जीवन अनेक पीड़ाओं से गुजर रहा है। आदिवासी स्त्री एक ओर वर्तमान व्यवस्था से शोषित है, तो दूसरी ओर स्त्री होने के कारण अपने ही समाज में शोषित है। समकालीन कविता में आदिवासी स्त्री जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। निर्मला पुतुल की ‘क्या तुम

जानते हो' कविता की पंक्तियाँ पितृसत्तात्मक मानसिकता को उजागर करती है, जिसमें स्त्री को केवल एक वस्तु के रूप में ही देखा। कभी उसके अंतर मन को समझाने की कोशिश नहीं की। कवयित्री लिखती हैं-

“तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के
मन की गाँठें खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास
पढ़ा है कभी
उसकी चुप्पी की दहलीज़ पर बैठ
शब्दों की प्रतीक्षा में उसके चेहरे को”¹⁶

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कविताएँ आदिवासी समाज की वेदना, पीड़ा, दर्द, टीस, उपेक्षा, अपमान, घुटन-टूटन, विवशता, विपन्नता, बदहाली, शोषण, विस्थापन आदि के साथ-साथ अपने अस्तित्व की खोज करने वाली स्त्री जीवन के यथार्थ को भी अभिव्यक्त करती हैं। वर्तमान समय में आदिवासी समाज अपनी अस्मिता और अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष कर रहा है। इस समाज के संघर्ष को बढ़ाने में समकालीन साहित्यकारों और प्रगतिशील बुद्धिजीवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लेकिन दूसरी ओर इनके संघर्षों और आन्दोलनों को दबाने की पूरी कोशिश भी की जा रही है। इसका उदाहरण सोनभद्र (उत्तर प्रदेश) की घटना से समझ सकते हैं। आदिवासियों की जमीन कब्जा करने के लिए कोई 32 ट्रेक्टर में 300 लोगों के साथ आकर आदिवासियों पर दिन दहाड़े गोलियाँ चलाता है। जिसमें 10 आदिवासियों की जगह पर मौत हो जाती है, और कई लोग घायल होते हैं। यह नरसंहार दिन दहाड़े होना उत्तर प्रदेश सरकार और कानून व्यवस्था पर सवाल खड़ा करता है। अतः समकालीन हिंदी कविताएँ आदिवासियों के सामाजिक जीवन यथार्थ को प्रस्तुत करने साथ-साथ व्यवस्था पर सवाल खड़ा करने में भी सक्षम हैं।

सन्दर्भ:

- ¹गंगा सहाय मीणा, आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृ.13
- ²<https://hindi.thequint.com/news/india/the-cost-of-statue-of-unity-can-irrigate-whole-gujarat>
- ³<https://hindi.theprint.in/governance/with-modi-set-to-unveil-statue-of-unity-gujarats-tribals-plan-protests/35402/>
- ⁴पिटू कुमार मीणा, मानगढ़ आन्दोलन केन्द्रित हिंदी साहित्य, अलख प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2013, पृ.10
- ⁵<http://www.dalitdastak.com/role-of-adwasi-in-freedom-movement-1911/>
- ⁶हरिराम मीणा, आदिवासी दुनिया, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृ.28
- ⁷सं. राजेन्द्र यादव, हंस, (मई-2005) अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.30
- ⁸<https://hindi.theprint.in/opinion/nation-will-be-weakened-by-sacking-the-rights-of-tribals/47788/>
- ⁹<http://thewirehindi.com/73261/supreme-court-tribals-forced- eviction-modi-government/>
- ¹⁰ज्ञानेंद्रपति, संशयात्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2004, पृ.20
- ¹¹<https://www.dalitdastak.com/bye-ramnikika-gupta-you-have-lived-a-meaningful-life-gave-a-lot-to-society/>
- ¹²सं. मदन कश्यप, प्रतिनिधि कविताएँ रमणिका गुप्ता, अक्षर शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008, पृ.123
- ¹³रूपचन्द्र वर्मा, भारतीय जनजातियाँ, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, द्वितीय संस्करण 2003, पृ.84
- ¹⁴निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ.26-27
- ¹⁵<http://thewirehindi.com/89776/govt-allowed-more-than-one-crore-trees-felling-environment-ministry/>
- ¹⁶निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ.08